सेज पर संस्कृत्त : धर्म की आड़ में पल रही अपसंस्कृति का कोरा चित्र

डा. वृजाली सु. मांडकर

लेखका मधु कौरकिया ने 'सेज पर संस्कृत्त' उपन्यास में जैन धर्म और उसके बुझी भावभावों को तथा उसके समाज पर पड़े प्रभावों को सूक्ष्मता से कहने का दुस्साहस किया है। समाज के नामी लेखक इन कृतियों और उनमें पल रहे अनंतियों पर लिखने का सहस भी नहीं कर सकते हैं। जो कार्य मधु कौरकिया ने किया है वह कार्य के तरीफ है।

'सेज पर संस्कृत्त' सिर्फ स्वी विमाश को कंद्र में रखते हुए लिखा गया उपन्यास नहीं है वह समाज की आँखों में भूल शृङ्खला हुए हर्ष का ठेका लेकर भिड़े को उगने वाले जैन धर्मविलोकियों का पर्वतार उत्प्रेरक बनाता उपाय है। “कितनी लज्जा की बात है यदि मुझे भरी भावुकता दे दी तो भूल भंडारी को मनाये दंग से भंडा बकरी की तरह हाक रहेंगे।” सीमित उद्घाटनों और देश के अंधारों से भिंत यह साधु जीवन िश्चर की असीमिता को नहीं सकता नी ही अपने 'स्व' को विशेष में समाहित कर सकता है।

इस उपन्यास में यह भी पवित्रता किया है कि स्वरूप हमेशा कोपलमण रही है परंतु समय आने पर वह काली माँ का भी रूप धारण करती है और अपयमान जैसे साधुओं को काली करती का भड़ाता करते हुए उसे शाक्ति बदला भी नहीं सकती है।

इस उपन्यास में धर्म के ठेकदार उस आवास आदमी का समुद्र उच्चारण करते हेतु प्रक्षेपण चरित्र संस्थिता है जिसका मालविका बराबर साथ देती है जो वह समाज की निक्षम कृतियों, तकलीफों का हमेशा से ही पैरी दुर्दशा से अवलोकन करती रही है। यानि विन धर्म की छटूकों को साध्य बनाने के लिए उसकी भाव यथार्थी है तो संसमाता उसका विशेष करती है। वह कहती है कि इतनी सी छोटी छटूकों में कहाँ से इतनी समझ है कि वह जैन धर्म के तत्त्वों के अनुसार आचरण करे, उसका तो अभी तक आईस्क्रीम खाने के लिए, कॉफी पीने के लिए हील लक्षित है, जब तब वह इस लालच, मोह और माया के बंधन से पर नहीं हटती तब तब इस आधारित को वह कैसे अपनाएगी?

छटूकों की अम्मा तो दोनों पुत्रियों को समाज की गंगे नजरों से बचाने के लिए साध्य बनाना चाहती है। अम्मा की सोच यह है कि वह धर्मसूची चादर औदंतों से समाज में उसे और बचायेगी।

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा
पुंज्यासितों हिंदी जर्नल, अक्टूबर - 2 (1), अप्रैल - जून, 2014
को उच्छ स्थान मिलेगा। समाज की बुरी नजरों से वह उनको बचाकर उनको समानार्थक जिम्मी दे पाएगी लेकिन संघिनेया उसका विरोध करती है- जैसी मतसा वैसी दशा, आदती दूधने की सोचेगा तो दूधनेगी ही जिनके पास आशा है वही धरी है, उसी के पास सब कुछ है। वह माँ को समझाती है कि तुमने तो धर्म का लबाबा बालो दो। बहुत बार बहस करना पर भी वह माँ को परामर्श नहीं कर पाती। छुट्टी के साथ स्वयं दीक्षा लेकर वह जैन धर्मविलासियों के गिरफ्त में फैस जाती है।

संघिनेया निर्भीक, विद्यमान परिस्थितियों में भी हिम्मत से कार्य करनेवाली, जीवन की घटनाओं पर बहुत ही गहराई से विचार-विमर्श करने वाली लड़की के रूप में दृष्टि गोचर होती है।

छुट्टी को रोकने के लिए संघिनेया लालच दिखाती है, उसे नया फ्रांक खरीदकर देती है और साध्वी बनने ये रोकने के लिए प्रयास करती है लेकिन पर में आने के बाद देखती है कि “कुछ लम्बों के लिए ही सही, छुट्टी को भीतर जीवन को जो ललक जागई थी संसार की खुबसूरत चीजों के प्रति जो आकर्षण जगाया, अभम उन पर पौंछ लगाने पर तुली हुई थी। छुट्टी की फिर खाश में माला लिए प्रायश्चित पर बैठ गई थी सब देखकर संघिनेया के भीतर एक नहीं कई कई ज्वालामुखी एक साथ फूट रहे थे......आक्रोश, हताशा अपनी असफलता, छुट्टी को भ्रष्टाचारीता, माँ के मातृत्वोत्सव, सबका ज्वालामुखी उस क्षण को लपत इसी भावना थी कि माँ से पंगा न लेने की सारी प्रतिस्पर्धा स्वभाव रहे गईं।”

इतना होने के बावजूद वह फिर फिर की तरह दुबारा उठ खड़ी है। फिर से उसे रोकने के लिए प्रयास करती है- जब माँ समझाने पर भी इन स्थितियों की गंभीरता और भ्रामविहार के समझ नहीं पाती तब वह आचार्य प्रसुख श्री जीवनानंद जी को दो पत्र लिखती है और दीक्षा की अनुमति वापस लेने के लिए कहती है।

पर जब वह ललकों में पहुँचती है तो उसे वह सब कुछ निर्भीक जान पड़ता है। उसे लगता है कि यहाँ “मध्यवृा का ओंघेरा पसरा पड़ा है ये सब थड़ हैं, यहाँ मस्तिष्क सिफर एक है। वही सूगराह और निर्णायक है सबका। यहाँ अनुशासन के नाम पर हर मुस्तु के हाथों में धर्म का एक पैकेज पकड़ दिया जाता है और वही बनता है उसके मौखिक का गेंद पास”

संघिनेया पर हमेशा से ही पिता की विचारधारा का प्रभाव रहा है, जो उसे जीवनानंदजी का सबसे आकर्षण करते हुए उसमें से रह निकलने के लिए मददगार साबित हुई है। जीवन सहज साध्वी नहीं होता वह तो विपरीत स्थितियों का दस्तावेज होता है राह पर कॉट ही कॉट हैं, जिनमें से आगे बढ़ना बहुत मुश्किल है। पर इसमें पूर्ण मोड़कर दीक्षा लेकर साध्वी बनने का पर्याय उसे स्वीकार नहीं है। इसलिए जीवन की विपरीतास्था में भी वह साध्वी न बनने के निर्णय पर अटक रहती है। जिसमें की मद्दत पर उसकी भावा, पिता, माँ और बनने का साथ छुट्तने पर भी वह धर्म से अपनी हिंदी में कार्यवाही रहती है। मूल ने जैन धर्म एवं जीवन दर्शन पर कार्य व्याख्या करते हुए वास्तव में धर्म, एवं उससे जुड़े तत्त्वों की भी बड़ी मौलिक व्याख्या की है... हमारे धर्म का धर्म हुत सीमित रहा है... सिफर अपने आत्म उद्वेषण और आत्मप्रेरणा लेकर, आत्म धर्म इसीलिए प्राप्त है कि उसमें अनन्त सामाजिकता को नकारक अपने को अपने ‘आत्म’ तक ही सीमित।
कर डाला है। आज के सन्दर्भ में धर्म के असली भूमिका यहीं हो सकती है...उसे जीवन और मानव सेवा से जोड़ना। उसे गांधी के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचाना (192) लेकिन जैन धर्म मीलबांदियों के लिए वह सिर्फ सेफ्टी लॉन्च बना है। महावीर की विराटता और विश्व-करुणा, प्रेम अहिंसा और अपरिहार्य संदर्भों पर कलिक पोती जा रही है। इन धर्म के आदेशों ने प्रेम, कर्मना, स्वास्थ्य और आत्मत्य के द्वारा दर्शाया बना कर दिया है... व्यक्ति के अपने पुराने संदर्भ, पहचान और रिश्तों से काट दिया है और जीने का कोई उद्देश्य नहीं जिसमें कोई आस्था नहीं है, समाज सेवा के लिए प्रतिबद्ध मर्यादांतर उससे अनुसार सत्य नहीं है क्योंकि वह आत्मसाधना में लीन नहीं थी। लेकिन वैज्ञानिक करती है कि ‘‘धर्म की यह लड़ाई हमें लड़नी ही पड़ती’ क्योंकि आज विवेचन के सभी धर्म गुरुओं ने धर्म की मनमाने दंग से व्याख्या कर पुरी धर्ती को घुमना, हेरा और हिंसा से लड़ता हुआ कर दिया है।’’ (85)

धर्म के रास्ते सभी दंग से चलते तो सावधान आज तक हजारों साधु-साधियों में से कोई बुद्ध, बिबेकांबाद, महावीर तो निकलते हैं महावीर ने कभी भी संसार को छोटी-छोटी बातों में, किस्मा पानी, पक्का पानी, हरा सूखा बत्ती पंखा, नहाने-घोंघे, स्वी-पुरुष आदि में ध्यान नहीं दिया था, उर्ध्वने तो जीवन में रोगनी दर्शन वाले जीवन को आगे बढ़ाने वाले धर्म में को विश्वास रखा था। उर्ध्वने इतने बड़े विवाह धर्म में कोई भी दर्शन वाले धर्म को समाप्त नहीं किया था, यह सब चीजें उनके चेहरे चपेट में ने उनके नाम गद्दर्क बना बनाया पैकेज धमा दिया है कि धर्म की दुनिया चलती रहे।

‘इद्नमम’ की मंदिरिकी की तरह संप्रभुता खुद की लड़ाई खुद लड़ना चाहती है। जिस तरह मंदा का जीवन, उसको उज्ज्वल शक्ति सिर्फ दूसरों के लिए थी उसी प्रकार संप्रभुता भी अपनी सारी राज्यत्वों दूसरों के लिए ही समाप्त करती है। जिस भू भाग में नारी शोभण एवं बलात्कार करने की बस्तु मानी जाती है वहाँ नारी संगठन केंद्र को चलाकर उसका नेतृत्व करते हुए परिवर्तन करना चाहती है। इद्नमम, चाक या सेज पर संस्कृत हो तीनों में नारी शोषण अन्याय, अत्याचार के खिलाफ संपर्कत है। वह प्रतिरोध करने के लिए कदमबद्ध हो जाती है। संप्रभुता सही सोच के कारण ही ऑफिस में फाइल्स थमाते हुए मैनेजर द्वारा गलत वर्तन करने पर वो नौकरी त्याग देती है। छोटा-बड़ा नारी कम्यूनिटी और विकास से दादा ने धर्म लगा लिया था उसको नैतिक जिम्मेदारी के तहत लौट देती है। छोटी दूसरा बलात्कार करने वाले अभ्यक्षण को एकात्म में बुलाकर उसे कहती है कि ‘एक धर्म गुरु होकर तुमने ऐसा किया इसलिए तुम्हारा अपाध्यात्म है मूर्त। जो ध्यान, जिल्ला और यथोपरांत आसू तुमने दूसरों को दिये, उसमें कौन है लेकिन वे आते हैं तुरारे पाप। तुम धरती के धन, पृथ्वी की गांधें...दूसरे, कौन भीमती हूं मैं तुम्हें (226) और प्रतिहिंसा की एक लपट बनकर उसका खुद करती है और थाने में जाकर आत्मसमर्पण करती है। स्वयं को भागाकर चुका सकती है वह इस तरह के कुक्कुम का पर्याप्त करना चाहती थी— यह सत्य उसके प्राणों से भी ज्यादा मुल्यवान था इस धार्मिक परिपत्र में आदमी को हिस्सा जानवर में तबीत कर दिया है, अनेको पीढियों को गुमराह किया है। इसलिए इस तरह कदम उठाकर धरती के धनों को वह मिटाना चाहती थी।

बहुत ही स्पष्ट एवं निर्धारित है मधु कांकरिया क्रांति कुमान जैन के शब्दों में मधुकांकरिया

पूर्विकसंस्तों हिंदी जर्नल. अंक - 2 (I), अप्रैल – जून, 2014
के पास धर्म और समाज को समझने की बेहद संवेदनाशील दृष्टि है। वे धर्म और समाज की सन्धि यों में छिपे झीलगुंगे और तिलचट्टों की प्रकाश में लाती है। कहने की जरूरत नहीं कि लेखका ने दुसाहस को साथ अपने समय के धर्मचरण का पदार्पण किया है।

इस उपन्यास में काम संबंधों का चित्रण भी करते हुए लेखका स्वार्थ, वासना, नैतिक मान्यताओं में आया हुआ पतन, सम्बन्धों का विघटन आदि का भी बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रण करती है।

साधी दिव्यप्रभा और ज्वानेत्र मृदा दोनों अपने सन्यासी जीवन में एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हुए प्यार के बंधन में बंध जाते हैं। इसके लिए उनको कुछ श्रद्धा ही लग। उन्हें कान की यह अद्वाज खािश, एक दूसरे पर मिलने की तीन स्वातन्त्र धारा-पात्र नहीं हो सकती है। यही प्रेम शक्ति है यही लोटो की धारा है। चांक की गति है। प्रेम की मूल्यवर्त्मक शक्ति है। इसके विना जीवन निःशास का दूसरा, जैसे अभी तक हमारा जीवन था। उन्हें लगा कि दूसरे पर पहले उनका जीवन सुलगता हुआ रूमि तथा, सन्यासी जीवन की बदरंग दुनिया में गुलाब ही गुलाब खिल उठते हैं। ज्वानेत्र मृदा स्वार्थकार करते हैं कि नहीं जाना दें कि मोक्ष सच्च है या नहीं पर तुम सच्च हो। तुझे हारा सोन्दर्ध, उदार धौल का आवेग, कामाक्षाओं को ये फूल, यह परम्परा, उजागरित करता यह मिलना...यही सच्छ है, जिसके एक इंटरे में स्वास्थ्य और इन्द्रिय निर्णय के झुठे सप्रस्तुति की बड़ी दिल्ली (184).... आज जान माना हूँ कि बिना स्नेह को जाने जीवन को सम्पूर्णता में नहीं माना जा सकता है।

स्वान सोन्दर्ध और अभिलाषाओं के अनन्तर ग्रंथ में ज्वानेत्र मृदा की पाने के लिए अब वह निवाले पड़ती है तब मृदा को गुरुभाई अन्नमूर्ति को साथ से फहचहाते पंखी द्वारा नाच डाली जाती है। गुरुभाई ने जो सख भोगा है उसे पाने के लिए वह पशु से भी बदतर हो जाते है और कहते है देवी बस आज रात तुम मेरी कामाक्षी को सात कर दो उदम वेग से बहती इस बेकाबू लहर को धारा लो....साधी जीवन में इस तुम वैसे भी खलित हो ही चुकी हो चाहे वह ज्वानेत्र मृदा की स्पर्शी बेकाबू दें हो, चाहे मेरी

अपने मित्र की प्रशिक्षा को पाने के लिए इस गुरुभाई ने जो थोका उसे हदता है वह साथ के चित्रण पर कलंक तो है यह साथ साथ कामाक्षी से जलने वाले यह साथ सच्चाई में जो दर दिखाते हैं। साधी जीवन को रोग कर देंगे कब तक करते रहेंगे। समाज का नैतिक उन्नयन करने के बजाए पतन का खाई तक कब तक ले जाएगे?

छुटकी तो जिससे सच्चा प्यार किया उसे अत्तत के नियत नहीं पायी। तपस्या से कोट तक का जिललट भरा देशानक सफर उसे करना पड़ा क्रैश जैसी भयानक बीमारी की शिकार हो गयी अनन्ताचार्य माँ बन गई। जिस जीवन की तुझे से बचाकर माँ ने साधी बनाया था उनके आत्म में आकार अपने आपके दुःखों के विशाल सागर में झंकती गईं.

नई पीढ़ी में आए हुए स्वेच्छाचार साधु, मृदा जीवन से दोबैं ही बचा पाए इस असहाय
नारी को यह उपन्यास धर्म, जैतिकता, श्री-पुरुष सम्बन्ध, मान्यतायें रूढ़ियों, सामाजिक मान
मर्यादाएँ आदि पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करता है। जीवन मुख्यतः लगने पर धर्म
का लबादा डालने से जीवन सुखकर नहीं हो सकता। यह दुनिया-खदूर के नीचे, मुलायम सिल्क
पहनने वालों की दुनिया है, यह सेज पर संस्कृत बोलने वालों की दुनिया है यहाँ साधु के लबादे
में उसका चित्रकरापन भी ढक जाता है। जैन जातक कथा, आत्मसाधना अमृत वचन आदि
पुस्तकों के साथ रजनीश की सम्प्रेत से समाधिक छुपकर रखने वाली यह साधुओं की जिंदगी है।
जैतन्त्रिक व वैष्णव धर्म के जिस कर्मकाण्ड के विरुद्ध जैन धर्म अस्तित्व में आया था, आज वे
ही सारे कर्मकाण्ड लेकर यह धर्म प्रस्तुत हो गया है तो इस धर्म की छाया में मनुष्य जीवन कब
तक सुरक्षित हो सकता है इसी पर प्रश्न चिह्न उठाने वाला यह उपन्यास है। यह धर्म की आड़
में पल रही अपसंस्कृति से मनुष्य कब तक संरक्षित है?

पुणियसिंह दिलीप मणिल, अंक – 2 (I), अप्रैल – जून, 2014